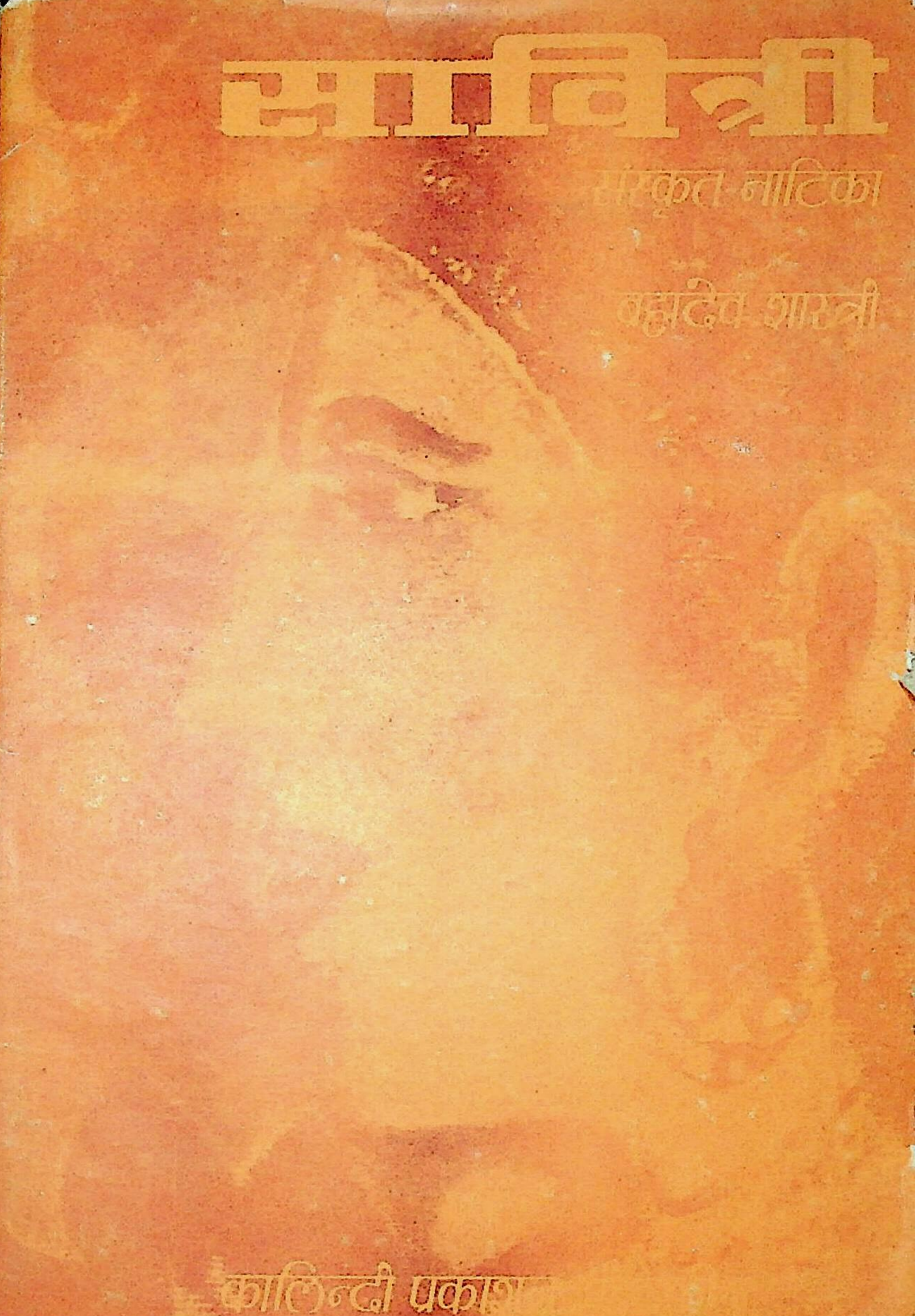

सावित्री

संस्कृत-नाटिका

ब्रह्मदेव शास्त्री

कालिन्दी प्रकाश

(दिल्ली-संस्कृत-अकादम्या आर्थिक-साहाय्येन प्रकाशिता)

श्री ब्रह्मदेवशास्त्री की अन्य संस्कृत-नाटिका
'वेला'

'वेला' आध्यात्मिक भूमि पर आधारित एक विशुद्ध कला-कृति है। यह महज नृत्य-नाटिका नहीं है। यह साहित्य और संगीत का, काव्य और दर्शन का, नृत्य और चित्र का—अपूर्व और सुन्दर समन्वय है। वेला' का कवि भी महाकवि जानकी-वल्लभ शास्त्री की तरह विद्वानों का कवि है। विशाल-वृहत्तर भारत की संकल्पना तथा राष्ट्रीयता और विश्व-बन्धुत्व की उदात्त-उदार भावना से ओतप्रोत यह लघु नाटिका विविधताओं का एक अद्भुत और सुरुचिपूर्ण संश्लेषण है। भाषा सरल, प्रांजल है, भाव गम्भीर, तीव्र और उत्प्रेरक ! विद्वत् समाज में इसका समादर अवश्यम्भावी है।

बिहारीलाल मिश्र

१३-१०-१९८४ प्राध्यापक, गया कालेज

*

प्रियवरेषु साशीराशि विनिवेदनमद: !

आपके उदात्त और दिव्य लेखन को मनो-वांछित आकार-प्रकार में देखकर अपार प्रसन्नता हुई। 'क्रन्दन' के जमाने से पाली हुई मेरी साध आपकी अक्षुण्ण साधना के फलस्वरूप अब कहीं पूरी हुई। आपका साहित्य (समग्र) इसी रूपरेखा में विश्व को आह्लादित करे।

व्याकरण और छन्द के ऊपर भी बहुत कुछ है, 'वेला' ने प्रमाणित कर दिया है। आप अव्याकृत प्रतिभा के पारावार हैं।

आर्ष भाषा को एक नई सज्जा उपलब्ध हुई है। विषय-वस्तु की गम्भीरता और अभिव्यक्ति के सौन्दर्यवादी लालित्य में एक होड़ सी मची है। आनन्द के अतिरेक से अभिभूत हुआ। दूसरे भी हुए होंगे।

जानकीवल्लभ

२९-१०-१९८४ निराला निकेतन,

मुजफ्फरपुर, बिहार

आदरणीय
श्री रमाकांत शुक्ल जी
को सादर भेंट

[illegible]
३०/१०/८३

(दिल्ली-संस्कृत-अकादम्या आर्थिक-साहाय्येन प्रकाशिता)

सावित्री

संस्कृत-नाटिका

(आकाश-वाण्या पुरस्कृता)

ब्रह्मदेवशास्त्री

कालिन्दी प्रकाशन,
दिल्ली

प्रकाशक :

कालिन्दी प्रकाशन, दिल्ली के लिए

श्री ब्रह्मदेव शास्त्री

२५, मलकागंज रोड, जवाहरनगर, दिल्ली-११०००७

©सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रथम संस्करण : १९९१

मूल्य : रु० २५-०० (पेपर बैक)
रु० ३०-०० (रेक्सिन बाउण्ड)

चित्र-सज्जा : श्री ब्रह्मदेव शास्त्री

मुद्रक : अमर प्रिंटिंग प्रेस,
डबल स्टोरी, विजय नगर, दिल्ली-११०००९

SAVITRI (Sanskrit Natika)—Shri Brahma Deva Shastri
First Edition, 1991
KALINDI PUBLICATION, DELHI

SAVITRI

(in its perspective)

SAVITRI's theme is based on '*Yama-Savitri-Upakhyan*' in *Mahabharat*. But the story of the play is newly spun with his own imagination of the author. It is but a small composition rather juxtaposition of some mythical and imaginary eventualities in time and space. It belongs more to an astral region of light and shadow with morning chant, mid-day heat and with the mystry of night. Here the Devas and the Asuras are depicted in conflict with each other where as in that hoary past, an echo of the modern atomic war is also heard.

In the play, celestial beings like Saptarshis, Moon, Muses of all the quarters, Devarshi Narada, Kacha, the son of Vrihaspati, various Devatas, Yama and Balakhilyas do participate. There are other divinities like Ribhu (for Dyumatsen), Kasha, his wife, Savitri, Satyavan, Rati, Urvashi, Yakshi, Priyamvada, Tamasa, Ahalya and Apsaras are also in their role.

In Savitri, there is an atomic war; Asuras, rejoicing in their negus den; and Devas, striving for atomic weapon and praying before Dadhichi (here a snow-clad mountain peak) where from they find uranium and plutonium for preparation of their Vajra. There is also the thundering voice of Goddess Parvati, who strings the bow of Lord Shiva against all evils and a scenario, snapped in the deep meditation of Savitri. Savitri in her trance, traverses with Yama the mystic arina of time ond floats just beginning from Sagar-Manthan to the bank of the present time. She also has a glimpse of 'Eternal Dawn' (Concept of Yogi Aurobindo) in soliloquy of Satyavan.

The references of Rama, Sita, Draupadi and Buddha are well justified as Savitri has aquired her Pra-Samkhyan (Samyam) Siddhi and is quite capable to see and penetrate through the trinity of time.

The language of the play is chaste and simple and no rigid rules of grammer and prosody are rammed to plaster and decorate the naivity of simple rhetoric of the words.

The epoch of Savitri just stands for the victory of life upon death, victory of light upon darkness and a message of 'Eternal Dawn' : all enlightenment on the mortal plain.

———

I owe gratitude to the Delhi Sanskrit Academi, an active and dynamic institution to promote Sanskrit and make it a living language; for their financial aid for the publication of this work.

I am also grateful to the great nationalist, industrialist and philanthropist Shri K.K. Birla for his kind donation towards the cost of paper.

I am also thankful to All India Radio, who valued this script and conferred upon an award to it in All India Sanskrit Drama Competition—1987-88.

—BRAHMA DEVA SHASTRI

सावित्री

सावित्री नाटिका की कथा-वस्तु महाभारत के 'यम-सावित्री-संवाद' पर आधृत है, किन्तु नाटिका वस्तुतः अपनी संरचना में सर्वथा मौलिक है। प्रायः महाकाव्यों में, पुराणों में ऐसे आख्यान प्रतीकात्मक भी होते हैं। सावित्री के आख्यान में स्वयं सावित्री, अश्वपति, द्युमत्सेन, सत्यवान् और शाल्व-प्रदेश एक प्रकाश-लोक की अभिहिति रखते हैं। नाटिका में द्युमत्सेन ऋभु के रूप में अभिहित है और उसकी पत्नी काशा है। प्रस्तावना में ये सूत्रधार और नटी के रूप में आते हैं, किन्तु आगे संविधानक पात्र बन जाते हैं।

कथा-सार (सिनॉप्सिस)

प्रथम अंक—नान्दी-पाठ। ऋभु और काशा द्वारा नाटिका की प्रस्तावना। सप्तर्षियों के साम-गान के पश्चात् ऋभु द्वारा सत्यवान् की खोज। अनिष्ट की आशंका। दिशाओं का अग्नि-गान। कलरव का प्रवेश और उसके द्वारा असुरों के आक्रमण और अणु-स्फोट की सूचना। सावित्री और सत्यवान् की खोज में निकले ऋभु और काशा का करुण प्रत्यावर्तन।

द्वितीय अंक—सावित्री की चिन्ता। मूर्च्छित सत्यवान् के लिए विलाप। गगनचारी देवर्षि नारद की ओर से निराशा। आकाश-मार्ग से देव-शिविर को लौटते हुए कच का अवतरण। सावित्री को आश्वस्त करना। सत्यवान् के लिए संजीवनी-विद्या के प्रयोग में कच की असफलता। कच द्वारा सावित्री को अमृत-विद्या की दीक्षा और मानस तट तक साथ।

तृतीय अंक—असुरों का आपानक-गृह। असुर-नायकों का विजयोल्लास-प्रदर्शन एवं नृत्त-गान। सहसा आकाश में पांचजन्य-निर्घोष से उनका सशंकित प्रस्थान।

दधीचि-शिखर पर देवताओं का आर्त-स्वर। वज्रोपकरण की प्राप्ति पर हर्ष। इसी बीच कच के आगमन पर उसका अभिनन्दन। सावित्री की अमृत-साधना से देवों की अवगति। यम के प्रति सावित्री के लिए देवों का परामर्श।

चतुर्थ अंक—मानस-तट। नाचिकेतस आश्रम। ध्यानस्था सावित्री की स्वप्न, निद्रा तथा तुरीया की अनुभूतियां। यम से साक्षात्कार, वार्तालाप एवं वरों की प्राप्ति। यम द्वारा काल के महानिशा-वन में सावित्री के प्रवेश के लिए निषेध, किन्तु सावित्री की प्र-संख्यान

'संयम' सिद्धि से यम का समाधान। यम के साथ सावित्री का महाकाल के निशा-वन का अवगाहन। काल के अन्तराल के अनेक परिदृश्य। सहसा प्रत्यूष का आभास। पार्वती की स्नान-वेला। यम-पाश से सत्यवान् की निर्मुक्ति। सावित्री की समाधि भंग। सत्यवान् का जागरण। कलरव की समाधि पर बालखिल्यों के साथ ऋभु और काशा का प्रवेश। मिलन तथा हर्ष। अप्सराओं द्वारा मातृ-वन्दना, जयगान।

पात्र-परिचयः

ऋभुः	=	द्युमत्सेनः, सत्यवतः पिता
काशा	=	ऋभु-पत्नी
सप्तर्षयः नक्षत्र- शिशवः, शंशाङ्कः	=	दिव्यलोक-वासिनः
दिशाः	=	दिग्देवताः
कलरवः	=	जनप्रतिनिधिः हुतात्मा
सावित्री	=	अश्वपति-दुहिता, सत्यवतः पत्नी
सत्यवान्	=	ऋभु-पुत्रः, सावित्री-पतिः
नारदः	=	देवर्षिः
कचः	=	बृहस्पति-पुत्रः
चण्ड-मुण्ड-उदग्र- कोलाहल-विडाल- असिलोमाः	=	असुर-नायकाः
दधीचिः	=	पर्वतात्मा, हिम-शिखरः
इन्द्र-बृहस्पति- वरुण-मित्र-कुवेराः	=	देवताः
रति-उर्वशी- प्रियंवदा-यक्षी- तमसा-अहल्याः	=	पतिप्राणा-दिव्यांगनाः
यमः	=	मृत्यु-देवता, सूर्य-पुत्रः
बालखिल्याः	=	देव-शिशवः
अप्सरसः	=	दिव्यांगनाः

—०—

ॐ

समर्पणम्

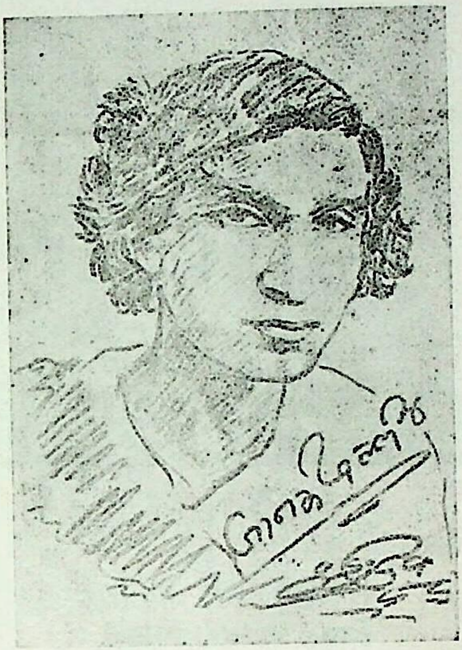

आदिकविकल्पः छायातपोऽभिरामः
राधा-वैधुर्य-व्यासः कालिदासान्तरविभासः
भवभूतेर्विभूतिः श्री जयदेव-कीर्तिः अस्मिता-मधु
पण्डितानाम् भगवन्तं तं सावित्र-प्रज्ञम्
श्री जानकीवल्लभम् वन्दे !

—ब्रह्मदेवः

ॐ

उपाह्वानम्

आद्ये सन्ध्ये,

किन्त्वया, यदि न पितुः
दीप्यते मेऽन्तराऽग्निः !

प्रिय हुतवह,

किन्त्वया, यदि न लयते
मे स्वरः मृत्यु-पारे !

मृत्युञ्जय हे,

किन्त्वया, यदि न विलसति
मद्वाचा द्यु-मधु-रतिः !

—ब्रह्मदेवः

ॐ

सावित्री

यस्य छायाऽमृतं यस्य मृत्यु ।
कस्मै देवया हविषा विधेम ! ॥

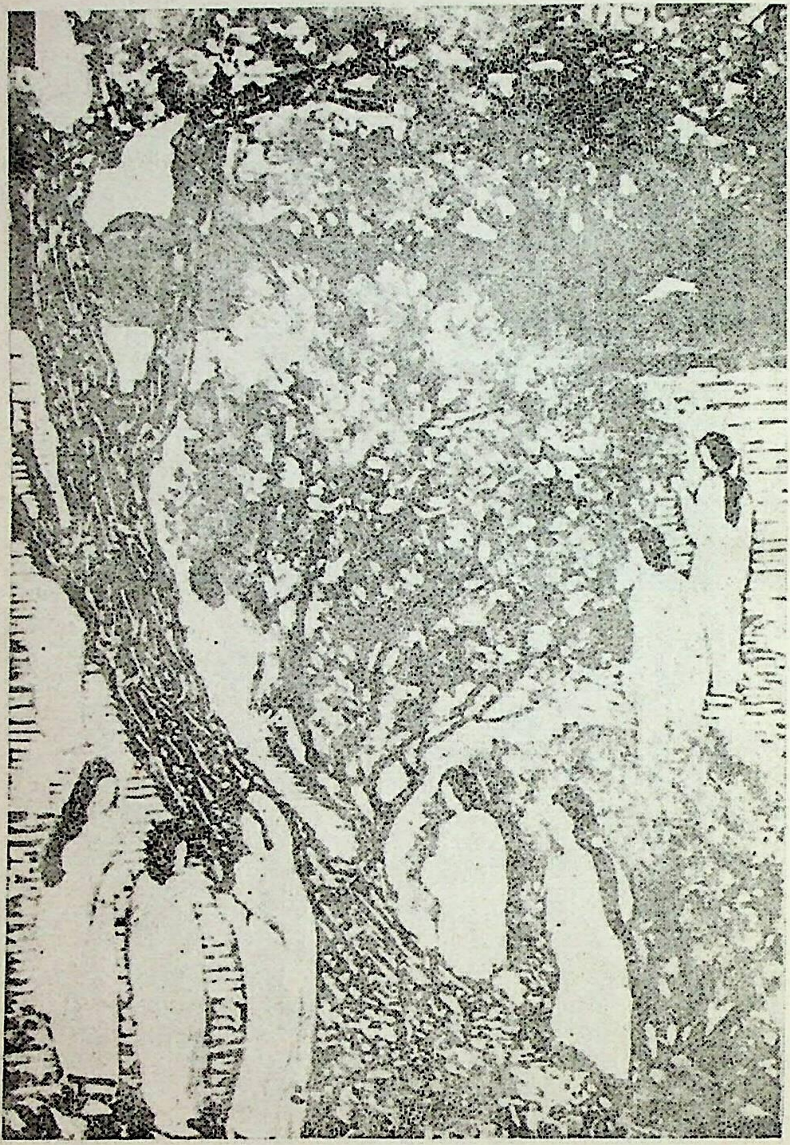

ऋभु-वनम्

ॐ

प्रथमोऽङ्कः

(नान्दी-पाठः)

शं नो मित्रः, शं नः छाया,
शं नः संज्ञा दिग्विभासा,
शं नो रात्रिः, श नो दिवः !

शं न इन्द्रः मरुद्धिमः,
शं वरुणः, शं धरित्री,
शं सावित्री संयमाख्या !

या भूतानां नैश-नीडा,
जागर्तिः ऋतक्रतूनाम्,
अमृता सा नः पृणोतु !

—०—

नान्द्यन्ते—

(प्रविशति ऋभुः । स आह्वयति काशाम्)

ऋभुः । एहि, एहि प्रियव्रते काशे,
उद्भासय मे क्षीणतरां दृष्टिम् ।

न कथं दीप्यते भरताश्रम-रंगपीठम्
न कथं च लयते संगीत-मूर्च्छना अद्याऽपि कुशीलवानाम्
समुत्सुक साध्यजनानाम्
हृल्लोचन-रोचन-संविधिः ?

काशा । कथमन्यथा भविता प्रियंवद,
तवाऽभिलषितेन ?
प्रस्तुता तेन्तःसलिला सरस्वती
च स्वप्न-सरितांवरा-प्रकृतिः उपाक्षम्
अथ च सर्वमेव हि सुसंभृतं जातम्
अभिनव-प्रयोग-प्रेक्षणकम्
नभसि नेपथ्ये च छायोद्याने ।

ऋभुः । एवं, एवं, हि श्रुति-मधुरे,
तदा क्व ते सप्तर्षयः नक्षत्र-शिशवः
च अकलंकः शशांकः ?

काशा । ते सर्वे सज्जा भवन्ति नेपथ्ये सामगानाय ।
तावदुत्तोलयामि ह्यचिरम्
जलद-जालां जवनिकाम् ।
पश्यतु भवान्
द्युमल्लतां भरत-गृह-वाटिकाम्
च स्वयं ब्रह्मणा प्रकीर्तिताम्
सावित्री-नाटिकाम् । (सा तथा करोति)
पश्यतु, पश्यतु, भवान् ।

(इति प्रस्तावना)

(ऋभु-वने भरताश्रमे छाया-विताने प्रविशन्ति सप्तर्षयः नक्षत्र-शिशवश्च राका-शशांकः)

(साम-गानम्)

मरीचिः । ओ३म् । छाया रात्रिः इन्द्र-शय्या
मेघोर्णा ह स्वप्न-रण्या
स्वःकुण्डला स्वर्ण-धारा ।

अत्रिः । ओ३म् । प्राची अर्च्चिः रश्मि-धाना
पुरुरावा उर्व्वशीध्मा
प्रकृष्णा मेखला दिवः ।

आंगिरसः । ओ३म् । हेमाभा उद्गीथ-वर्त्मा
मरुदश्वा रंकु-दलभा
माध्यन्दिनी नाक-पृष्ठा ।

पुलस्त्यः । ओ३म् । अपराह्णा वभ्रुवाना
धिष्ण्य-दर्भा भस्म-रिक्था
ताम्र-तामा पाटलाभ्रा ।

पुलहः । ओ३म् । हरिता क्षोणी प्रतीची
मेघान्तरा सिन्धु-रम्या
विश्वथार्हा त्वष्टृ-कन्या ।

क्रतुः । ओ३म् । सन्ध्या सान्द्रा सोम-स्निग्धा
धैवते विश्रब्ध-कण्ठा
लयती वेलाऽनिलाद्रा ।

वसिष्ठः । ओ३म् । मधु निम्लोचा निडीना
प्रयता प्रैति निगूढा
निर्ह्लादिनी नैश-वीणा ।

(सर्वे निष्क्रामन्ति)

(प्रविशतः ऋभुश्च काशा)

ऋभुः । भो काशे, सोम-पानमिव हि साम-गानम् ।
क्व गतः सत्यवान् मे पुत्रः आदित्य-स्नातकः ?

काशा । स तु अश्वपति-कन्यया सह
समिदाहरणाय दूरंगतः इत्यनुमन्ये ।

ऋभुः । किन्त्वदूरे किं श्रूयते
आर्त-झंकृतिर्वा कोलाहल इव ?
तत्र दृष्टव्यतिकरमिव सम्भाति किञ्चित् ।
अथवा कथमेवं दुःकल्पयति मे मनः ।
एहि, बहिः पश्याव: ।

(द्वौ निष्क्रान्तौ)

(प्रविशन्ति दिशा अग्नि-वलयाः सर्वा नृत्यन्ति ।)

(आकाशे)

ज्वल ज्वल ज्वल अग्नि-वलय,
कलय लय-विकलताम् ।
दलय शान्ति-निलय-दिवो-

दाम-रव-मधुरताम् ॥
ज्वलतु धरा, वलतु सिन्धुः,
रवतु दिवा, निशा स्रवतु ।
नोध्वनतु मरु-मृषा
मृत्यु-मधु-तृषा वृषा ॥

अण्वणु-घन-घन-क्वनन्
ऋभुवनं विक्लवन्
कृत-विदीर्ण-कीर्ण-शशी
रश्मि-रिक्थ-सविता ।

गलत्गरल-कलम्बिता
असुर-निकर-संहृता
विधुत-मरुत-विद्यु-लता
क्वणतु करुण-कविता ॥

(सर्वाः तिरोहन्ति)

(प्रविशति कलरवो विकलवेशः)

कलरवः । सर्वे सावधाना भवन्तु ! सर्वे सावधाना भवन्तु !
सावधाना खलु आदित्याः,
वैष्णवाः, सोमदेवाः,
शैवाः, शाक्ताः, अग्निधानाश्च !
सावधाना खलु प्राची, प्रतीची,
उदीची, अवाची, प्रदिशश्च !
सावधाना खलु नभस्थाः सागरस्थाः सप्तदीपाश्च !
आहरन्ति असुरास्तत्र
छायाऽमृतं ऋभुवनस्य !

वज्रं इन्द्रस्य, पाशं वरुणस्य, शान्ति जलधेश्च,
हासं चन्द्रमसः ।
प्रज्वालितं तैः नभः । प्रधमितोऽयम् पवनः ।
निर्मर्दिता च पृथ्वी ।
ते आक्रमन्ति स्वर्गं, मर्त्यं चान्तरिक्षम् ।

(प्रविशतः ऋभुश्च काशा)

ऋभुः । कैषा विप्लव-वार्ता ?

काशा । कलरव रे, कुतस्तावदाहूता ?

ऋभुः । कथय रे, किमेतत् क्रन्दनम् ?

कलरवः । तात ! पश्यतु आकाशं अग्निस्तोम-नीकाशञ्च ।
आशंकेऽहम् तत्राऽऽक्रन्दति अरण्ये अश्वपति-दुहिताऽपि ।
अचिरं गत्वा तामपि आपृच्छतु कुशलम् ।

ऋभुः । सा तु ममाऽपि कन्या सावित्री ।
आक्रन्दति सा ? कथं रे, किं सा एकाकिनी तत्र ?
आह, कुत्रस्था मे नेत्र-ज्योतिः !
काशे, अनुदिशतु माम् पन्थानम् ।
संभावयामि तत्र अणुस्फोट इव संजातः ।
क्वाऽस्ति सावित्री, क्व मे तपः सत्यवान् !
स्वस्तिरस्तु, स्वस्तिरस्तु सर्वेषाम् लोकानाम् !

काशा । नाऽहम् पश्यामि किञ्चित्
अन्धकार इव निलयते मे दृशि ।
न जाने क्व मे सुलोचना सावित्री,
क्व मे उरुस्वप्नः सत्यवान् !
गच्छावस्तावत् ।

(निष्क्रान्तौ)

कलरवः । **(प्रविशति पुनश्च विकल-स्वरे)**

सर्वे सावधाना भवन्तु भोः !
तत्र अणु-स्फोट एव संजातः ।
दिशो रक्त-दिग्घा इव निभान्ति ।
इतोऽपि प्रसरतीव तद्विषाग्निः ।
विकला प्रधावन्ति मृगाश्च
तरु-शिखरेभ्य उड्डीनाः सन्ति
वभ्रुवाताः पतत्रिणः ।
अपि च कम्पन्ते तत्र वियत्-पथे
दग्ध-वक्षसो वलाकाः ।
निपतन्ति कल-हंसास्ते पंक-रिक्थे तडागे
तथा च पृष्ठ-भागे, नदति भीषा-विरावे
मानव-ग्राम-सीमा । ... ...
आह, तावद् विशोधयामि पन्थानम् ।

(निष्क्रान्तः)

(नेपथ्ये रभन्ते स्वराः)

सावधाना भवन्तु भवन्तः !
प्रसरति ज्वाला दिगन्ते,
प्रदहति अभ्रिणी मेघमाला,
प्रलयति संभिया सिन्धु-वेला,
प्रसरति च विकृत-विषाणम्
अन्तरिक्ष-स्मशानम् ।
सावधाना भवन्तु देवाः,
यक्षाः, गन्धर्वाश्च मानवाः !

तत्र प्रज्वालितोऽग्निः ऋभु-वने,
अपहृतं छायाऽमृतम् । अथ च
निःक्षरति मध्याह्न-कान्तिः
विष-कपिशित-भस्म-राशिरिव ।

(प्रविशतः पुनः ऋभुश्च काशा)

ऋभुः । क्व मे नेत्र-ज्योतिः ?
अक्षमोऽहम् किंचिदपि लक्षयितुम् ।
(तार-स्वरे) सावित्रि......सावित्रि.......
क्वाऽसि मे बाले ?

काशा । प्रसरतीव इतो वनाऽग्निः ।
न लक्ष्ये सावित्रीं न सत्यवन्तं न किमपि ।
अयि, दाहलग्नमिव जातम्मे दुकूलम् ।
न प्रभवामि कथमपि अग्रे उपक्रमितुम् ।
आवर्तते मे पुनः मूर्च्छा ।

ऋभुः । क्वाऽसि, क्वाऽसि, सावित्रि,
आह, न परावर्तते कुतोऽपि
मे करुण-क्रन्दन-प्रतिध्वनिः ।
काशे, परिवर्तस्व तावत्
नाऽऽवाम् प्रभवावः स्थातुमत्र समधिकम्
एतन्निविडे प्रदाहे ।
आह, क्वास्त आवयोः जीवन-रेखे !

काशा । वैतरणीव उपस्थितेयम् अग्नि-धारा ।
कथन्तरिष्यावः ?
शष्कशमीव परिदह्यते वाह्याभ्यन्तर-शरीरम् ।

ऋभुः । सर्वथा अन्धयति माम्
यमसमोऽयम् वर्धमान वह्निः ।
नाऽस्ति गतिरग्रे, परिवर्तस्व ।... ...
त्वरय, त्वरय, काशे, गृहाण एतत्सजलकमण्डलु
ताप-शमनाय ।
आह, कियद्दूराऽस्ति तदभयारण्य-भूमिः !
त्वरय, त्वरय, काशे !

(निष्क्रान्तौ)

(इति प्रथमोऽङ्कः)

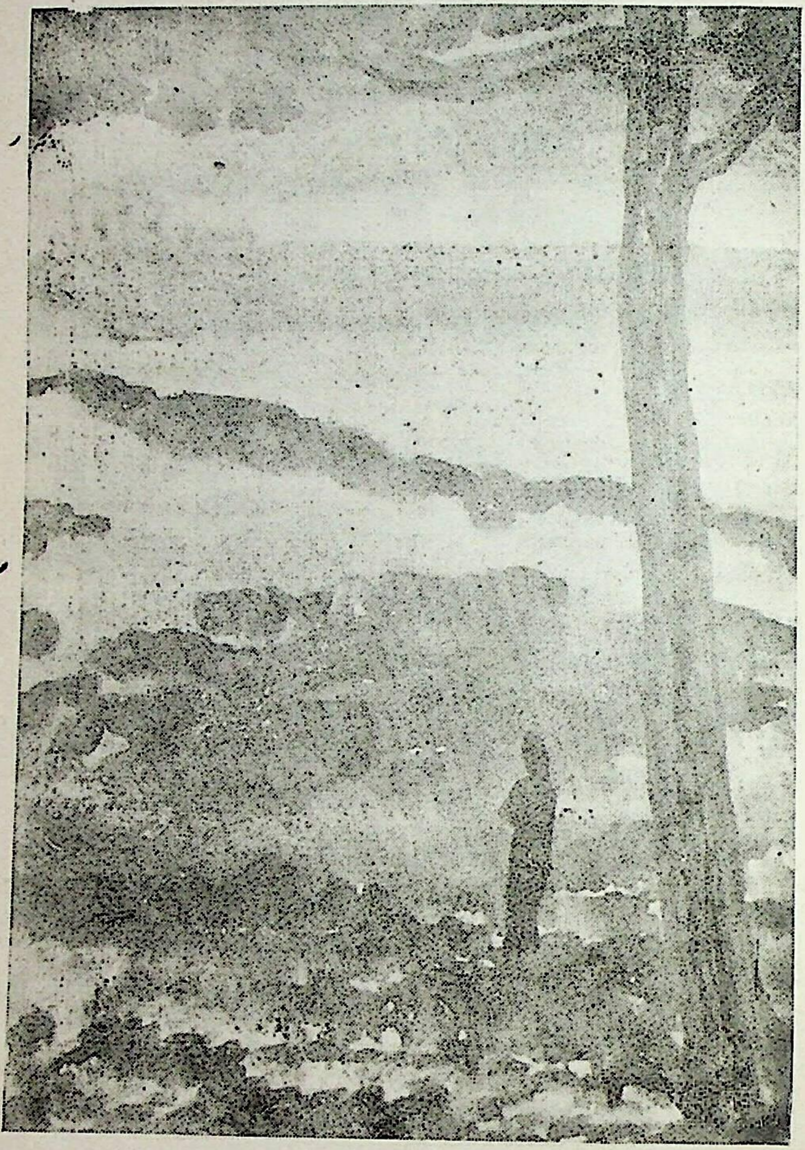

क्व गतो मे सत्यवान्!

द्वितीयोऽङ्कः

(प्रविशति सावित्री अन्तरालात् एकाकिनी व्याकुला)

सावित्री । क्व मे प्राणप्रियो भर्ता सत्यवान् ?
अपगतेव मध्याह्न-वेला ।
स तु प्रभात-काल एव समिदाहरणाय
ऋभुवने गतवानाऽऽसीत्,
कथं चिरायते अद्ययावत् !
न लक्ष्यते स्पष्टं किमपि
आदीप्त-मध्याह्न-तापे ।

(आकाशे परिलक्ष्य)

किन्तु तत्र किं सम्पतत्यदूरे
विच्युत-शृङ्गार-हार इव ।
पश्यामि तावत् तद्गत्वा किमिति ।.. ...
क्व गतः सत्यवान् !
नमति वेला च विदधति माम्
एवमेकाकिनीं दुर्विलापाम् ।
आह, कियत्तप्ता शाल्व-भूमिः,
कति सम्मूर्च्छित इव समीरः !
क्वाऽस्ति मे सत्यवान् !

(निष्क्रान्ता चंचला)

(प्रविशति कलरवः)

कलरवः । क्व गतः सत्यवान् प्रियसखः,
क्व सा सावित्री मे भगिनी ।
न दृश्यते ऋभुः न काशा न कोप्यत्र ।
शून्ये आरसति मे स्वरः ।
न शाम्यति वह्निः समिद्धः ।
न हि लभ्या शान्तिः दुरापा ।
केवलमाऽऽवलन्ते प्राणाः शेष-यज्ञाहुतिरिव ।
भो उषे, क्व ते शान्तिः ?
भो दिव, क्व ते सुखम् ?
भो सन्ध्ये, क्व ते अमृतम् ?
अनुसरामि तावदग्नि-पथम् ।
(निष्क्रान्तः)

(प्रविशति पुनः सावित्री उन्मादिनीव)

सावित्री । (उल्लोकित-दृष्ट्या)
दग्धा पृथिवी, दग्धा च दिविः ।
दिग्धा दिशा दारुणाः ।
ज्वलति मेघाऽग्निः निसाची,
रोदिति रुद्रः समुद्रः ।
क्व गतो मे सत्यवान् !
(अवलोकित-दृष्ट्या धरा-शयितं सत्यवन्तं निर्वर्ण्य)
आह, तावदयमेव हि विच्युत-शृङ्गार-हारो मदीयः ।
कथं कथं रे, स्तिमित इव सत्यवान् मे प्राणप्रियः !
(सा मृजति सत्यवतः शिरश्च अनुभवति वियोग-वेदनाम्)
... ... (आर्त-स्वरे)

उत्तिष्ठ सत्यवान् !
किन्त्वं सम्मूर्च्छितो वाऽत्र
ते निद्रा-संनिवेशः ? उन्मीलय ते नेत्रे ।
न जाने क्व पितरौ च कियद्दूरा
तत्स्निग्धारण्य-भूमिः । को वाऽत्र
यो निर्हरति मे सन्देशं सम्प्रति तान्प्रति ।
निर्जने विरौम्यहं एकाकिनी वराकीव ।
बुध्यत सत्यवान्, प्राणवल्लभ, देहि मे प्रतिवचनम् ।
इयमहन्ते सावित्री विलपन्त्यद्वितीया
तापाञ्जलि-विपाका, अश्रुधारा-निवापा ।

(सा स्पृशति सत्यवतः ललाटम्)

आह, कैषा धूम्र-लेखा निर्विशति मे दृष्टिम् !
उद्बोधय माम् सत्यवान् !
कति विदहति मे हृदयम्
तव विप्रयोग-वह्निः !
कथय वा किम्पश्यसि स्वप्ने ।
आश्वासय मामधीराम्
सावित्रीं मरु-चित्रित-नीराम् ।

(सा सत्यवतः शिरः स्वाऽङ्के निधाय विमृशति नारद-निर्दिष्ट-वचनम्)

सावित्री । (स्वगतम्)

आह, तावदुपगता सा वेला
सत्यवतस्तिरोधानस्य ।

अवगतं दुर्भाग्यम् ।
किन्तु मृत्यो, अवेहि मामपि ।
अहमपि सम्यगवेक्षणीया त्वया ।
न त्वम् शक्नोषि परिहर्तुम्
सावित्र्यां संनिहितं सत्यवन्तम् ।
देवेश्वर यम, अहमपि प्रतीक्षे
ते शुभाऽऽगतिं गतक्लेशा निर्निमेषा ।

(पुनः आकाशे किञ्चिदुपलक्ष्य)

कैषा कण्ठ-सुधा ! आम् तत्र स एव
नारायण-नारायणेति निनदः
देवर्षिः नारदः ।
स एव याति वियति संवह-पथे ।
अनुसरामि तं शुभव्रतं प्रणिधानात् !

(ध्याने आलपन्तीव)

अद्य नाऽवगच्छति मां स निर्दयो नारदः
रुदन्तीं सावित्रीम् ।
अथ कथं सोऽपि वीणा-विरहितः
अवनत-मुखः संयाति याम्य-दिशाम्
दिव-निर्वासित इव !

(पुनः ऋतं च सत्यं च उपजपन्ती आकाशमालक्ष्य)

आश्चर्यं खलु आश्चर्यम् !

तत्राऽऽनमति क एषः
अभ्र-रेखः अमृताऽभिषेक इव !
(पश्यति विस्मित-लोचना)
....

(अवतरति धीरगतिः कचः)

(अवतरणं नाटयित्वा च सावित्रीं परिक्रम्य)

कचः । देवि, अयमहं कचः ।
देवगुरु-पुत्रः कचः, कविगुरुशुक्रस्य शिष्यः
किन्तु अभिशप्तः कचः ।
कथन्ते विलपनं संबाधते मे गतिं वियत्-पथे ?
किन्त्वमेव हि सावित्री ?
मम देवयानीव सौवर्ण-सन्ध्या निरवद्या ।

सावित्री । अहो, किम्पश्यामि—
देवगुरु-पुत्रः कचः......त्वम्.. ...
विकचपुण्डरीकनिभः किन्त्वमेव हि कचः !
आह, कथं रे, असमये एषो विस्मयोद्भावः !
अत्र कथमर्ऽच्चिष्ये त्वाम् देवपुत्र,
क्व लभ्यमऽत्र इष्टाऽभिहारिकन्त्वत्कृते !
अस्मिन् दिग्ध-दिवसाऽवसाने
इयन्तिष्ठति एकाकिनी
अश्रुमालिनी सावित्री ।

कचः । कथमऽश्रुमालिनी मे भगिनी ?
सजलायेते मे नेत्रे तवाऽश्रुपातेन ।
किम् प्रसुप्तोऽयम् सत्यवान् ?

सावित्री । न हि, गतप्राणो निलयते ममाऽङ्के ।
कच, अहमपि कालं प्रतीक्षे ।
अकस्मात् ते दुर्लभ-दर्शनात् जायते रोम-हर्षः ।
बन्धो, उत्सेचय मां दग्ध-हृदयाम्
सावित्रीं तवाऽश्रु-तरल-दृष्ट्या......
ऋतायते चाऽऽवयोः इयम्मृत्यु-मधु-वेला ।
कच, एहि एहि निकटम् ।
इयम् प्रक्षालयति ते चरणौ
स्नेहाऽश्रुणा निकरुणा सावित्री ।
(रुद्ध-कण्ठा अश्रूणि विमुञ्चन्ती अवतिष्ठति)

कचः । आह, मूर्च्छितोऽयम् सत्यवान् !
अभिज्ञाता ते ऋद्धा मुमुक्षा ।
समाश्वसिहि भगिनि,
न त्वम् शोकमर्हसि अनाथेव ।
अत्र तिष्ठति त्वत्सम्मुखं कचः, अमृत-संकल्पः
देवगुरु-पुत्रः, द्वितीय-शुक्र इव ।
अलमऽतिक्रन्दनेन । अवेहि तावत्
मृत्यु-संवरणं तु मे सहजा सिद्धिः ।
सुखं प्रतीक्षस्व, प्रयतामि ।
(स्मरति प्रणिधानमुद्रः संजीवनी-विद्याम् । किन्तु विस्मृति-विपर्ययेन परिलक्ष्यते विफलः स्विदित-भालश्च अवतमसित-गात्र-माल्यः)

(स्वगतम्) देवयानि, प्रियसखि,
कियन्मधुरन्ते प्रतिदानम् !

चित्रं यत् त्वयैव अभिशप्ता मे संजीवनी विद्या ।

(दीर्घं निश्श्वसति)

सावित्री । (**कचमवलोक्य**) किञ्चिन्तयसि देवपुत्र,
किन्तत्र तेऽन्तरे विघटितं क्षणाऽन्तरेणैव ?
पश्यामि, अद्याऽहं उभयथा संगृहीता—
ममैतेन दुर्भाग्येन च ते करुणाकलित-मुखाकृतिना ।

... ...

कथन्न बुध्यसि सत्यवान्,
अत्र उपस्थितोऽयम् कचः,
देवगुरु-पुत्रः कचः ।

कचः । भगिनि, धैर्यं विधेहि ।
स्मरामि तावत् नहि निश्शेषितम्मे तपः ।
न हि सर्वथा निराकृता मे संजीवनी विद्या ।
कवि-गुरु-प्रसादात् सक्षमोऽहम्
दीक्षयितुन्त्वाम्,
यदि चेत् समुत्कण्ठा वर्तते तत्प्रयोगे ।
सम्भाव्यं हि ततो निःसंशयम्
सत्यवतः पुनर्जीवनम् ।

सावित्री । कथय, कथय, कथमिदं सम्भाव्यम् ?
कच, आश्वासय मान्ते वचनात् ।
प्रियंवद, कथय कथं विधेयः
सत्यवतो जीवनोपायः ?

कचः । स्मरामि देवयानीम्
दावाऽग्निमिव मे तपोद्याने ।

अद्याऽपि सा प्रज्ज्वलति मे प्राणे
दीप्तदीप-शिखेव ।
देवयानि, किं कृतन्त्वया—
मणि-विहीन-फणिरिव परिहीनतेजः
परिसंवृतः ते प्रिय-कचः ।

सावित्री । देवयानीति कवि-पुत्री, भावयामि कच,
तर्हि किमनृतमनुष्ठितन्त्वया ?
कथय कच, न समालोच्यम्मया समधिकम्
तवाऽश्रुप्लुत-विमुग्धाऽवेक्षणम् ।
अवगमय तावत्तव परिदेवनया
दुःख-सहभागिनीं भगिनीं सावित्रीम् ।

कचः । न खलु कथनीयं निर्विशेषम् ।
सावित्रि, क्रन्दन्ति मे प्राणाः त्वया सह ।
आह, यदि चेत् समर्थोऽहम्
शमयितुमसुरोन्मादम्,
किन्तु अभिशप्तेन कचेन न किंचित्संभाव्यम् ।

सावित्री । किमु न समर्थोऽसि दीक्षयितुम्माम्—
यथा त्वया पूर्वोक्तम्
शेष-वियोग-विधारणाम्
तवाऽमृत-विद्याम् ?

कचः । भवतु कल्याणन्ते ।
न खलु कुण्ठिता मेऽस्मिता ।
अद्याऽपि शेषा मे विद्या
अहं दीक्षयिष्यामि त्वाम् सावित्रि !

एवं हि साफल्यम्मे मनोरथानाम्
चाऽत्र मेऽवतरणस्य ।
अद्यतः प्रथिता यातु मे तपः सिद्धिः
सावित्री-विद्येति भुवने !

सावित्री । अनुगृहीताऽस्मि कच,
कथय, कथय, का ते सपर्या,
कोऽसौ विधिः, कः संयमः,
क एषः संकल्पः, के च ते मन्त्राः ?
साधयिष्यति तत्सर्वम्
सावित्री ते प्रतिश्रुत-वचना ।
सुस्थिराऽस्मि, अवहिताऽस्मि,
दीक्षय मां कच !

कचः । तव वचनमेव हि मे समाधानम् । ... ...
संभावयामि ... ...
त्वमेव ह्याऽऽद्या सन्ध्या सपर्या,
त्वमेव समिधा, वेदि-विधिस्त्वमेव ।
त्वमेव सा मे विचितिः सुपर्णा,
त्वमेव अर्च्चिश्च शिखा तुरीया ।
त्वमेव मे विद्या तत् सचित्रा,
श्रद्धाश्रिता अमृता संवित-श्री ... ...

सावित्री । (परिवर्जयन्तीव)
कच, माऽवलंभतु संवीक्षणमेवम्
अस्या विप्रलब्धायाः ।

किं साध्यन्त्वया एवं स्तुतिना ?
अन्धकार एव निपतामि तावत् ।
न मे कर्णे द्रवति ते मधुवाणी ।
श्रुतपूर्वाः श्रुति-स्वराः,
अदिति-वने आदित्येन सह ।
अद्य वांछामि अचिरं सत्यवज्जीवनम् ।

कचः । धैर्यं विधेहि सावित्रि, नाऽत्र
किञ्चित् शंकनीयम् ।
श्रृणु ते अभिहितां अमृताऽवधारणाम्
सर्वथैव अव्यर्थाम् । ... ...
त्वमेव खलु सा प्रणिधान-संज्ञा,
त्वमेव निद्रा जागर्तिस्त्वमेव ।
त्वमेव प्रकृतिः प्रसृतिश्च रात्रिः,
काल-त्रयाणां हि निधानमेकम् ।
न हि स्पृशेत् त्वां यमो न छाया,
न जषेत् प्रकाशं महानिशाऽपि ते ।
सृतेश्च प्रलयस्य तु सेतु-सन्ध्या,
त्वमेव मृत्युरपि जन्म-लेखा ।
किन्नाम जन्म, उत्क्रमणञ्च किंच,
किन्त्वत्त्कृते स्वः धरिणी हिरण्या !
सावित्रि, यापय प्रतीक्षान्तु त्रियाम-शेषाम्
मन्त्रं जपन्ती मद्वोक्षितं कृतम् ।
तुरीय-प्रान्ते तमसि तिरोहिते
विमुक्तस्वापो हि सत्यवान् भवेत् ।

सावित्री । धारयामि ते मन्त्राण् कच,
अथ आलोकिताऽन्तरे जायते प्रतिभासः ।
लक्ष्यते उच्छ्वसित एव सत्यवान्, न गतप्राण इति ।

तदा स्थास्यामि ध्यानस्था यापयन्ती
त्रियाम-शेषषाम् वेलाम् अमृतमाऽऽदधानाम् ।

कचः । नाऽस्ति दूरो नाचिकेतसाऽऽश्रमः ।
तत्रैव मानस-तटे निदिध्यासितव्या
त्वया अमृत-विद्या ।... ... ...
निशान्ते तटोपान्ते, पार्वत्याः स्नानोत्तरे
तत्पदांऽकितेन अमृतेन अञ्जितव्यम्
सत्यवतः ललाटम् ।

स मृत्यु-पाशात् सकृदेव हि विमुक्तो भवेत् ।
नामसन्देहः, इति तु ध्रुवम् ।... ... ...
अनुसरतु मां सावित्रि,
नयामि कन्धर-न्यस्त-सत्यवन्तं मानस-तट-यावत् ।
ततो मयाऽपि शीघ्रं गन्तव्यम्
नारद-वचनाद् दधीचि-शिखरे
देवानां निभृत-शिविरे ।

(अन्धकारे विलीयते तयोः छाया)

(इति द्वितीयोऽङ्कः)

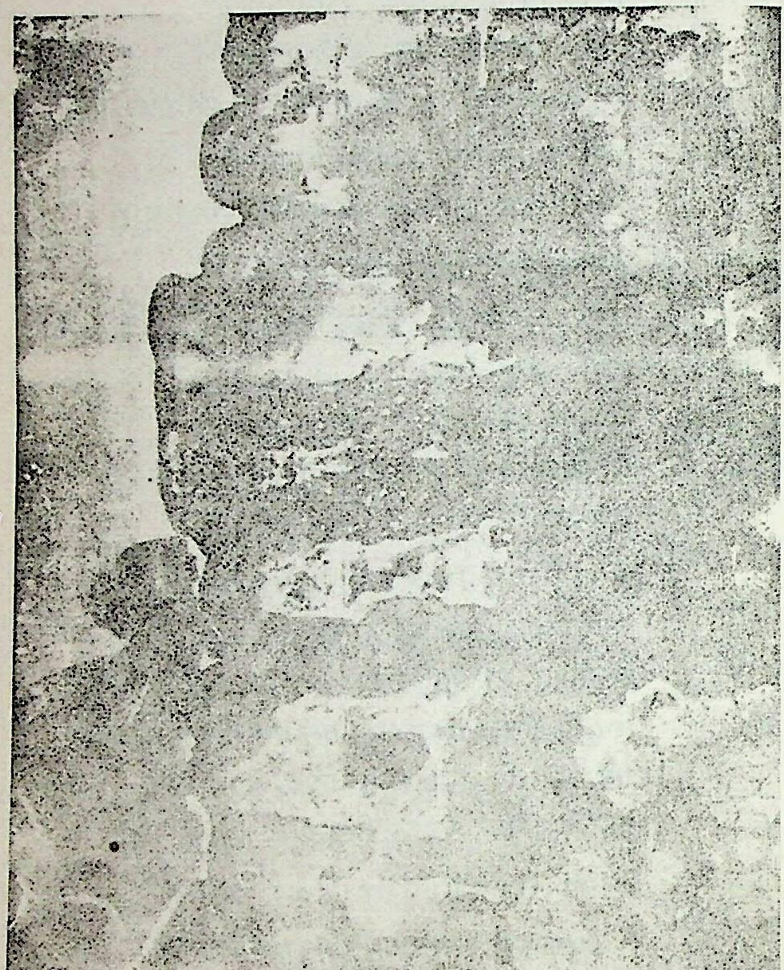

कौवेरी नगरी रौति

तृतीयोऽङ्क:

(असुराणां आपानक-गृहम् । प्रविशन्ति जयोल्लासे चण्ड-मुण्डोदग्र-कोलाहल-विडालाऽसिलोमादयः असुर-नायकाः । ते सर्वे मद्यम् पिबन्ति)

चण्ड: । भो मुण्ड, शमितो जातः देव-विक्रमः ।
किन्त्वयाऽऽहृतं नन्दन-पारिजात-पुष्पम् ?

मुण्ड: । कथन्नहि, तत्तु सादरं समर्पितम्
स्वामिनो मनः प्रसादाय ।

चण्ड: । तावत् कस्ते पुरस्कारः ?

मुण्ड: । इन्द्रस्य जुष्ट-पान-पात्रं च
सोमगन्धा मदिरेयम् !

चण्ड: । भो उदग्र, किन्त्वयाऽऽनीतम्
शचेः वलयञ्च उर्वश्या नूपुरम् ?

उदग्र: । निःसन्देहम् । ते तु असुर-राज-कन्यया
सप्रीतं संगृहीते ।

चण्ड: । तावत् किन्ते आभिहारिकम् ?

उदग्र: । नारदस्य वीणा, तुम्बरोः डमरुः !

चण्ड: । भो कोलाहल, कथय का ते उपलब्धिः ?

कोलाहल: । आहृता स्वर्मन्दाकिनी-हंसाः ।
अपि च प्रतिध्वनितम् दिव्य-संवेशम् ।

चण्ड: । तदा किं ते उपायनम् ?

कोलाहलः । वज्राट्टहासः अप्सरसामार्त-गीतिश्च
तरुण-कुम्भ-ऋंकारः !

चण्डः । भो विडाल, किन्त्वयाऽपहृतम्
वैश्रवण-स्वर्ण-कुण्डलम्
चाऽपनीता अलका-पताका
हीरक-हार-राका ?

विडालः । कथन्नहि, तत्सर्वा संकलिता
असुरराज-परिभोग-सम्पदा !

चण्डः । तावत् कस्ते उपहारः ?

विडालः । चन्द्रमसो हासः, स्वच्छन्दो विलासः !

चण्डः । भो असिलोमन्, कस्ते पराक्रमः ?

असिलोमा । प्रज्ज्वालिता मया वरुण-वेला,
निर्वापिता चाऽपि समुद्रे ।
आनीतः काल-पाशः प्रभु-कर-शोभा-विभासः ।

ते सर्वे । भो चण्ड, आख्याहि त्वमपि स्वकीर्तिम् ।
द्रवतु कर्णाऽमृतम् किञ्चित् ।

चण्डः । **(मद्यम् पीत्वा संस्मरति रक्तेक्षणः । पुनः प्रकाशे)**
श्रूयतान्तावत् ... ...
निर्वासितास्ततो देवाः यक्ष-गन्धर्व-किन्नराः ।
दिशाऽन्तरे त्ववानीताः ऋभुक्षाः सप्तर्षयः ॥
ऐरावतो दलिताऽङ्गः उच्चैःश्रवाः विमर्दितः ।
मरुतः उत्तरीयन्तु **(प्रदर्श्य)** कन्धरे मे विभूष्यते ॥

(करतल-ध्वनिश्च डमरु-नादः)

धूम्रकेतु-श्रयः सूर्यः, यमो भ्रमति दुर्घटः ।
अत्र मे मुकुटे भाति (प्रदर्श्य) चन्द्रचूर्णं तटांऽकितम् ॥
(सहास-डमरू-नादः)

विष-दिग्ध-निभा गंगा, नीलकण्ठो निलोहितः ।
तस्य नयन-त्रितये इषिरः शिशिरायते ॥
(उत्ताल-डमरू-नादः)

पार्वती-शिखरं शुभ्रं धूम्रे आकुलितं घनम् ।
कौवेरी नगरी रौति रिक्त-कोशा निशावृता ॥
(करतल-ध्वनिः)

अपश्रियः अप्सरसः नृत्य-वाद्य-मदालसाः ।
निष्प्रभा सा सभा ऐन्द्री निस्तब्धैव कृता मया ॥
(साट्टहास-डमरू-नादः)
(स प्रेंखितोत्तरीयः परिक्रामति च नृत्यति)

चण्डः । हः हः हः, भुर्भुवः, हहः हहः हहः स्वः ।
महः महः महः महः, ज्वल-ज्वल-ज्वल जनः ॥
तपः तपः तपः तपः, सत्-सत्-सत् सत्तमः ।
पिब रे, पिब रे सुरां, मधुरां अधरामृताम् ॥... ...

सर्वे । (नृत्यन्ति)
सारे सारे सारे गमाः
गारे गारे गारेऽ धमाः ।
गागा मामा पापा धाधा
निनि निनि निनि निसां ।
सां ध, नि प, ध म, प ग, म रे, ग सा ।
(अथ मृदंगश्च घटः)

धतां धतां...धत्ताम् ।
धाकिट-तिरकिट, त्रिक् त्रिक्, त्रिधाम्......
कटितिक कटितिक कटितिक कृताम्......
धाकिट क्रिटकिट, किट, कटिधृताम् ।............

चण्डः । (करतलेन कर्णं पिधाय उपगानमारभते)
ताम् ताम् त न न ताम्
ताम् तन-नताम् ताम् तन-नताम् ।
तरि न नूम तरि तरि न नूम
तनु तनाम् तन न न न ताम् ... ...
(सहसा आकाशं परिलक्ष्य)
अथ किं रे, आरवते तत्र आकाशे ?
(सर्वे आकर्णयन्ति)

चण्डः । आम् तत्र धनति पांचजन्यो नीरदे ।
तथा च स एव याति अतिस्वन-दिव्य-याने
नारदो दधीचि- दिशाम् ।
एतेन कुटिलेन काचिन्नूतन-कुमन्त्रणा सम्भाव्या
देवानां गिरि-शिविरे ।
गच्छामस्तावत्
यतो हि शीघ्रं सूचनीयम् देव-वृत्तम्
असुर-संसदि ।

(प्रस्थानक-पादाघात-विन्यास-पूर्वकम् निष्क्रान्ताः)

(प्रविशन्ति देवाश्च सप्तर्षयः दधीचि-शिखरम् । ते सर्वे प्रार्थयन्ति)

इन्द्रः । (समाधिस्थं दधीचिं सादरं प्रणम्य)
हतवीर्यो वज्रहीनः स्वर्गच्युतो हीनतेजाः ।
इन्द्रोऽयम् त्वा नमति अद्य नः शरणं भव ॥

वृहस्पतिः । हतज्ञानो मन्त्रहीनो नमति त्वाम् वृहस्पतिः ।
उन्मीलय मे नेत्रे शरणं भव तपोधन ॥

वरुणः । सृतपाशो रसाभासो निस्तब्धो नीरवोदधिः ।
मृत्युंधयो वरुणोऽयम् विरौमि ते चरणे प्रभो ॥

मित्रः । गतरश्मिः गतच्छायः संज्ञाशून्यो विसन्ध्यकः ।
अवच्छन्नो निशाचारैः निःश्वसिमि परन्तप ॥

कुवेरः । रिक्त-कोश-परिवेशो ह्यशिवः पार्वती-पदे ।
वैश्रवणो विकलाङ्गो वन्दे त्वाम् द्युति-लोचन ॥

यमः । न मे संयमो नयति मृत्युपारे न मे गतिः ।
जडीभूतो न जानामि त्वद्विना शरणं कुतः ॥

सप्तर्षयः । सर्वमेव हि भस्ममिवाऽपनीतम्
अपसृता ऋभु-वन-संकलिताः श्रियः ।
नहि शान्तिः लोकालये क्वाऽपि लभ्या
शिष्यते भगवन् केवलं तपस्त एव ॥
(दधीचेः समाधि-जागरणम् च आकाशे)

दधीचिः । श्रुतोमया विषादो देवानाम् ।
अवगतोऽपि उपद्रवोऽसुराणाम् ।
किमिच्छन्ति भवन्तः मत्सकाशात्
इति तु मे बिकल्पना भवति ।

देवाः । निःशस्त्राः वयं सर्वे न प्रभवा हि आहवे ।
तवाऽस्थिस्तु तपोदृप्त, वज्रं भवितुमर्हति ॥

दधीचिः । शरीरस्था न मे प्राणाः निर्मुक्तास्ते अनावृताः ।
स्वेच्छया कुर्वन्तु यदभीष्टं न मे तत्र व्यथा भवेत् ॥
गावः लिह्यन्तु मे गात्रम् आमांस-लवणाश्रितम् ।
रिक्थाऽस्थि-चयाऽऽकीर्णम्
वज्रं तेन हि कारयेत् ॥

देवाः । अनुगृहीता वयमत्र देवाः,
अनुगृहीता ऋषयश्चाऽपि साध्याः ।
आशा-प्रदीपाः पुनरेव दीप्ताः,
लोक-प्रथं यातु यशः दधीचेः ।।
**(ते सर्वे कथन्ति संयतेन्द्रियैः दधीचि-शिखरम्,
चयन्ति च निधौत-शोणित-द्रव्य-निचयम्)**

देवाः । **(साह्लादं)** उपलब्धम् रे उपलब्धम् !
उरूल्वणम् प्लुतोल्वणञ्च वज्रोपकरणम् !
प्रथतु महात्मनो यशः ।
(प्रविशति कचः)

कचः । किमत्र भोः । नारदेनाऽऽदिष्टा मे उपस्थितिः
अत्र देव-शिविरे ।
किं जातं विशरणं दधीचेः ?
उज्जीवति मे संजीवनी विद्या ।
स पुनर्जीवितो भवेत् महात्मा !

देवाः । **(सोल्लासम्)** स्वागतन्ते कच,
वत्स, किं त्वयाऽधीता संजीवनी-विद्या ?
आश्वासय नः पुत्रक,
निर्वापय अस्मद्दीर्घा-प्रतीक्षाम् ।
अत्र एषः तवाऽभिन्दनोत्सुकः देवेन्द्रश्च
आनन्द-बिह्वलस्ते पिता वृहस्पतिः ।
**(कचः प्रणमति तान् सर्वान् क्रमशः । सोऽपि
परिष्वज्यते प्रगाढं इन्द्रेण च वृहस्पतिना)**

वृहस्पतिः । इदानीं गच्छामो वयम्
मन्त्रणार्थं शिविरे ।

(सर्वे निष्क्रान्ताः)

× × ×

(हिम-गिरि-शिखरे प्रविशन्ति देवाः)

इन्द्रः । भो देवाः, प्रत्यागतः कचः ।
तेन सम्यक्साधिता अमृत-विद्या ।
किन्तु देवयानि-शापात् स न खलु समर्थः तद्विनियोगे ।
तेन दीक्षिता सावित्री नः सहाया भविष्यति ।

वृहस्पतिः । नारदेन सद्योऽभिज्ञातम्
यत् सावित्री सत्यवन्तं स्वांऽके निधाय
निदिध्यासति मानस-तटे अमृत-विद्याम् ।
त्रियाम-शेषा हि साधना ।
प्रत्यूषे मानस-तटोपान्ते पार्वत्याः स्नानोत्तरे
तत्पदांकितेन अमृतेन सत्यवान् पुनर्जीवितो भवेत् ।

देवाः । तावत् भगवती पार्वत्यपि आराधनीयाऽस्माभिः ।
कथम् विस्मृतं मातृ-शरणमद्ययावत् । स्मरणीयं खलु
तस्याः पुराऽऽश्वासन-वचनम् ।
गच्छामो वयम् मातृशरणं उषसि उपाकरणाय ।

यमः । तावत् किमाऽऽज्ञापयन्ति भवन्तः ?
निशान्तवेलैव हि सत्यवतो निधन-वेला ।
अहं स्वयमेव यास्यामि सत्यवत उत्क्रमणावसरे
तमानेतुं यम-सदने ।

देवाः । प्रिय यम, सावित्री न हि सामान्या स्त्री ।
सा तु पतिव्रता, सन्ध्येव दीप्ता, गायत्रीव पवित्रा ।
सा खलु दाक्षिण्येन व्यवहर्तव्या,
कारुण्येनाऽनुगृहीतव्या
च शुभेन वरेण सम्भावयितव्या ।

यमः । तदा परीक्षाऽवसरोऽयम् यमस्य च सावित्र्याः ।
आशासे साधयिष्यामि भवतामभीप्सितम् ।

(निष्क्रामति यमः)

(अन्धकारे विलुम्पति देव-सभा-छाया)

(इति तृतीयोऽङ्कः)

सावित्री

मृत्युपरे अमृतदेशमभिजाने अभिजाने !

भारतीय पुरातत्त्व-विभाग से साभार

चतुर्थोऽङ्कः

(मानस-तटे नचिकेताश्रमे निदिध्यासति सावित्री कचप्रदत्त-
मन्त्राण् च प्रविशति ज्योतिर्गर्भ-स्वप्न-लोके)
(सावित्री-स्वप्नम्)

(प्रविशन्ति क्रमशः रतिः, उर्वशी, प्रियम्बदा, यक्षी, तमसा च अहल्या)

(आकाशे निधन-गानं च नृत्यति रतिः)

मृत्यु-परे अमृत-देशमभिजाने, अभिजाने ।
प्रेमपरे विरह-वेशमभिजाने, अभिजाने ।।

(नृत्यति उर्वशी)

यत्र वकुल-गन्ध-मुकुल-राजि-रजसि रम्भिता—
लता-प्रता, व्यथा-कथा तरु-तले विजृम्भिता ।।

(नृत्यति प्रियंवदा)

यत्र मधु सुधा-निधु वितप्यते वनाऽन्तरे ।
प्राज्य-प्रवण-श्रवण-मेघ ईरितो दिगन्तरे ।।

(नृत्यति यक्षी)

मेघ-मेदुराम्बरं संवदति प्रिय-कथाम् ।
यक्ष-शिखर-मौन-मुखर-विरह-तप्त-संव्यथाम् ।।

(नृत्यन्ति सर्वाः)

मृत्यु-परे अमृतदेशमभिजाने, अभिजाने ।

विरह-मधुर-सकल-क्लेशमभिजाने, अभिजाने ।।

(प्रविशति छायाभासो यमः)

यमः । (स्वगतम्) तत्र अभिशेषा सत्यवतो निधन-वेला ।
संयमितो मे क्षणः ।
कुतो मे पाशः ? तम्पाशे निबध्नामि ।

(नृत्यति तमसा)

वहति नदी विकौमुदी क्षपित-नैश-दीप-शिखा ।
भ्रमति तटे अन्ध-तरी कवि-त्विषा विकम्पिता ।।
तिमिर-कूलमिव दुकूलमाऽऽवलति दिशि दिशि ।
भ्रान्त-दिशा याति निशा, तपन-तुहिन-वने शशी ।।

(नृत्यन्ति सर्वाः)

मृत्यु-परे अमृत-देशमभिजाने, अभिजाने ।
विरह-विकल-स्वरोन्मेषमभिजाने, अभिजाने ।।

यमः । (स्वगतम्) कथमिन्द्रजालमिव मयि संघटितम् ?
प्राणा धूम्राकुला इव उत्क्रमन्ते ।
ज्ञातव्यं—क्रूरकर्माऽहम् अविजेयो भावनया ।
अग्रे सावधानता विधेया मया
लोक-विश्रुतेन यमेन !

(नृत्यति अहल्या)

यत्र ध्वनिर्न प्रतिध्वनिः श्रूयते हि प्रान्तरे ।
गौतमः स प्रियतमः विदयते निशाऽन्तरे ।।

(नृत्यन्ति सर्वाः)

मृत्यु-परे अमृत-देशमभिजाने, अभिजाने ।
प्रेम-प्रखर-प्रहर-शेषमभिजाने, अभिजाने ।।

यमः । कुतो मे संयमः ?
अपसृत-पाशः रुद्ध-श्वासः
निस्तरामि तट-विहीन-वेलेव ।
अहो, प्रेमिजनानां किन्नाम मृत्युः, किं च जीवनम् !
पश्यामि अमृतम्, अमृतम्, सर्वत्र ।

(तिरोहति छायाभासः)

× × × ×

(सावित्री सन्तरति निद्रादेशे चाऽनुसरति सत्यवतः स्वगतम्)

सत्यवान् । (निद्रा-सान्द्र-देशे स्वगतम्)
क्वाऽस्ति मे सावित्री, न याति दृष्टा, न प्रैत्यभिज्ञा क्वाऽपि
कथमन्ध-भिक्षु-समः, सम-विषम-संक्रमः,
संतरामि निरवधिम् यम-निविडमम्बुधिम् !
उर्ध्वमधः शून्यमिव प्रथति सर्वतो दिशः !
न हि भूमिः, न हि पन्थाः पदन्यास-मात्रिकः !
न हि रविः, न हि शशी, तार-हार-सृत-नभः
घनान्धकार-परावार-प्रलय-निलय-सन्निभः !

सावित्री । इयमहम् सावित्री अनुसरामि त्वाम् प्रियतम !

सत्यवान् । अहह, कैषान्तर्ध्वनिः,
किं स्वरति मे धरणिः ?—
हरित-वसना, सरित-रसना, सावित्री-सरणिः !

आम् तावच्चिति मे शेषा, स्मृति अद्याऽपि अनिमेषा।
अत्र मे निभृत-गुहान्तरे ज्वलति सैव निर्वात-दीपशिखा!
तावद् विश्वस्तोऽहम् यदि चेदस्तमिते मयि
प्रत्यन्ते चेतना-तटे आवर्तति मे पुनर्मृत्युः,
तत्र ध्रुवं रे ध्रुवम्—प्रस्फुटितो भवेदाकाशः
शिवस्याऽशेषाऽट्टहास इव!
तदुच्छ्वसिते निःप्रकाशे उत्पस्यन्ते
उत्फुल्ल-प्रतिभासाः शतशताऽरविन्दाः चक्षुमन्तः!
तदाभिनव-सृति-स्पन्दने स्वनिष्यन्ति अतिमानस-लोके
शतशत-सन्तति-प्रवाहाः!
अहमपि उत्क्रमिष्ये जातवेदाः पुनः अम्लान-सत्यवान्
ते प्राणे च विश्वाऽऽयतने अमृतस्य जयगानमिव!

× × × ×

(सावित्री उपक्रामति तुरीया-देशे। सा पश्यति यमम् पाश-हस्तमुपसरन्तम् सत्यवन्तम्प्रति)

यमः । **(प्रविश्य)** अत्र शयितः सत्यवान् गताऽऽयुः। निबध्नामि तच्छरीराद् व्यक्तांऽगुष्ठमात्रं पुण्यपुरुषम्।

(स तथा करोति च प्रक्रामति याम-दिशां किन्तु पृष्ठतः सावित्रीमवलोक्य स्वगतम्)

कथं सावित्र्यपि लघु उपसरति सत्यवन्तम्, रोहिणीव चन्द्रमसम्। नाऽहम कर्त्तव्य-मूढः।
निश्शेषमिति सत्यवतो जीवनम्।
नियति नयति तम् पाशवद्धम्मया सह।
अत्र कोऽवकाशो भावनायाः?

सावित्री । (**अनुसरन्ती**) देवेश्वर यम, इयम् प्रणमति त्वाम्
सावित्री सत्यवतः पत्नी ।

यमः । (**परिवर्त-दृष्टिः**) भो सावित्रि, शुभाशीः ।
श्रुतम्मया ते पातिव्रतं च तवामृत-साधना मानसतटे ।
महाभागे, अद्य पुण्यात्मा सत्यवान् सुनिर्धारित-समयः
संयाति स्वयम्मया सह महाकाल-सदने ।
निर्वर्तस्व त्वम्, न त्वया गन्तव्यम्
जीवनाऽन्तरे अव्याकृत-लोके ।

सावित्री । दयालो यम, सत्यवान्तु मे प्राणाः ।
यत्र स नीयते वा संगच्छति,
अवेहि, तावत्तु मे अप्रतिहता गतिः ।
अन्तः संवेदिनः देवाः । तेऽपि जानन्ति माम्
पातिव्रतधर्मचारिणीम् नूनम् ।
प्रथिता तेऽपि सर्वज्ञता ।
अन्तर्यामिन्, न कथमवबुध्यसि मे हृदयम् ?

यमः । जानामि त्वाम् सावित्रि !
देवा अभिनन्दन्ति त्वाम् गायत्रीमिव बहुमानाम्
अभिलषन्ति च सिद्धि तवाऽमृत-संकल्पस्य ।
अद्य पुणोति मेऽपि दृष्टिम् ते प्रिय-दर्शनम् ।
ब्रूहि तावत् सावित्रि, किमपि अभीप्सितम् ।
साधयिष्यामि त्वत्कृते । किन्तु अवधेयम्—
सत्यवतो जीवनम् तु अदेयम् ।

सावित्री । अनुगृहीताऽस्मि देवेश्वर, त्वद्वचनाच्च देवानामनुकम्पया
वर्धते मे उत्साहः निवेदनार्थं किंचित् । श्रृण मां देव !

यमः । सम्बाधते ते मधुवाणी । अज्ञातस्नेह इवाऽऽवलते मे
मनसि ते प्रति ।
ददामि किमपि अभिलषितं त्वत्कृते इति मे प्रतिश्रुतिः ।
कृपणोऽहम् केवलं सत्यवत्स्वत्वे ।

सावित्री । देव, तत्र मे दुःखितः श्वसुरः, हतराज्यो निर्वासितः
गत-चक्षुश्च । देहि मे वरं —
स लभत् ह्यचिरं स्वराज्यम्
सुखी भवेच्चक्षुमांश्च पूर्ववत् ।
भास्वन्तु ऋभवः शाल्व-प्रदेशे
तपेन बुद्धया च बलेन तेजसा ।

यमः । तथाऽस्तु, सावित्रि,
शीघ्रमेव हि स लभेत् स्वराज्यम्
सुखञ्च कीर्तिं च सुदिव्य-दृष्टिम् ।
निर्वर्तस्व एतेन स्वपथे यशस्विनि,
मा मृग महाकाल-निशा-वने त्वम् ।

सावित्री । न हि कश्चित्क्लेशो मे सत्यवत्पथचारिण्याः ।
अपि च शान्ति-पुलिनमिव सुखयति माम्
त्वादृश-सहृदय-देव-सन्निधिः ।
संवर्धते मे कुतूहलं यदहमपि समीचीः त्वया सह
महाकाल-वनम् अद्य प्रत्यक्षी करिष्ये ।

यमः । मा मा अनुसरतु सावित्रि, तत्र घन-नीलान्धकारे
तिरोहतीव चेतना-सीमा !
दुर्भेद्या खलु अतिचेतन-गुहा नाम !
वृणीष्व अन्यमपि वरं यत्त्वया वरणीयः, ददामि ते ।

किन्तु न सत्यवतो जीवनम् प्रार्थितव्यम् ।
शोभने, प्राप्यमेव हि यत्त्वम् वृणोषि ।

सावित्री । सत्यम् । दया दानं च दाक्षिण्यम्
देवानाम् स्वाभाविको धर्मः ।
त्वत्सदृश-देवजनानां सकृत-संगतिरपि शत-संकल्प-सिद्धिः ।
विदिता सप्तपदा मैत्री अपि लोके । श्रृणु तावन्मेऽपरं
वरं यद् मया वरणीयः—
यातु मे पितृ-कुलं शीघ्रं शत-सन्तति-कुलायकम् ।
सत्यवता-सह मे भातु औरस-पुत्र-शतम् भुवि ॥

यमः । तथाऽस्तु सावित्रि, नाऽन्यथा गतिर्मे तवाऽग्रे ।
किन्तु, माऽवलंभय अग्रे ते विपथं काल-वने घने ।
निर्वर्तस्व सावित्रि, मा गा व्यथां नैशिकीम् ।

सावित्री । मृत्युदेवते, कति मे उत्कण्ठा ते स्वरात् । न कोऽपि खेदः
तवचरणाऽनुसारिण्याः सावित्र्याः ।
सुखद एव हि एषो घननीलान्धकारः (**पश्यति गूढम्**)
अहो, किमिति उद्वहति तमोमूलात्
उज्जयिनीव शिप्रा-तटे !
अयि, तत्र प्रस्फुटति सहस्र-दल-कमलमिव
आकाशे प्रोच्छरित-पाटल-प्रकाशे... ...

यम । (**स्वगतम्**) आश्चर्यम्, प्रणिधानशुद्धेव दिव्यदृष्टिः ।
(**प्रकाशं**) जायते मे समाधानम् सावित्रि,
परिज्ञाता ते प्रसंख्यान-सिद्धिः ।
सुलोचने, पश्यतु तावद् अदूरे काल-विवरे
तदगर्गर-सागर-मन्थनम् समुज्झित-घनम् ।

सावित्री । कथं विस्मयावतरणमिव मे नयने !
अहो, सिन्धु-तलात् निःसृता सद्यःस्नाता उर्वशी ।
श्रृणोमि तस्याः नूपुर-क्वणितम् ।
विद्युल्लेखेव कति विभाति सा तटांकिता तत्र !

यमः । पश्य सावित्रि, हिमधवलैरावतं च मरुदुन्मदमुच्चैश्रवसम् ।

सावित्री । कोन्यः निःसरति सुधा-कलश-कर-भारः,
आम्, भगवान् धन्वन्तरिः एषः लोकानां जीवनोन्मेषः ।

यमः । सावित्रि, पश्य, तत्र प्रखरति असुराणां सुरोन्मादः ।

सावित्री । प्रसन्नाः खलु देवा अपि प्रभा-प्रमुदाः सुधाप्लावाः ।
अहो, विष-पानेऽपि कथं स्मयते स्तिमितलोचनो नील-लोहितः ?

यमः । तत्र तपन्ति सप्तर्षयः । अवतरति स्वर्मन्दाकिनी
शिव-दिव-जटा-तरंगिनी कलकल-ध्वनिः ।

सावित्री । तत्र किमिति तरति तरान्धुः इन्दु-रुचिः ?

यमः । नीयते तत्र प्रलय-रात्रौ मत्स्यराजेन मनोस्तरणी ।

सावित्री । के ते सौम्य-दनुजाः सन्ध्यामुपासन्ते ?

यमः । भद्रे, ते तु प्रह्लादोवलिश्च गयः । ते निदिध्यासन्ति
विष्णुपदम् ।

सावित्री । अरे, एषो निश्चितरूपेण रावणः ।
स कथं शिरोघृतकैलासः नृत्यति उन्मद इव ।
अपि च विदधति पार्वतीमेवं लुलित-कुन्तलाम्
च भिया भव-परिरम्भ-व्याकुलाम् ।

यमः । श्रृणु, समीपे स कुम्भकर्णः प्रतिध्वनति वज्रम्
च विकम्पयति नभोत्तान-वारुण-वारणान् ।

सावित्री । कथं हताश इव विभ्रमत्येषः ऋषिकल्पः सपत्नीकः ?

यमः । स तु पुत्र-शोक-विहतः अरुन्धत्या सह ब्रह्मर्षि वसिष्ठः ।
छन्दोमयी वाणी विपाशा आदिशति तं व्यथा-मूढम्
आत्मघात-व्यावृत-मनसम् नवजीवन-पथम् ।

सावित्री । कैषा धम्मिल्ल-माधवीलतेव नाग-कन्या
प्रविशति निभृते जनकोद्याने ?

यमः । अपि च किम्पिहितं तस्याः सित-प्रावार-निचुले ?

सावित्री । देव, तत्र वैदेह-सदने वैतान-मण्डपे
निभाति निशान्त-स्वप्न-रेखेव [शिव-धनुः ।

यमः । तत्राऽपि पश्य सावित्रि,
अच्छल-लोहित-धाराम् यत्र प्रज्ज्वलति अर्धचन्द्र इव
जामदग्न्य-परशुः ।

सावित्री । कोयम् सन्तरति तिथ्य-सागरम्,
अतिक्रामति निर्विन्ध्याम् च सह्याद्रिमालाम् ?
आम् भगवानगस्त्य एव । प्रणमति तम्वारुणिम्
विन्ध्या । अहमपि वन्दे लोपामुद्रा-प्रियवरम् ।

यमः । सावित्रि, पश्य तावन्मरीचिकाम् ।

सावित्री । अहह, तत्र तु भगवान् राम एव एषः ।
कथमाक्रन्दति च विमृग्यति आत्मगतम्
भवभूति-प्रत्ययां जानकी-छायाम् !
घनायतेऽन्धकारः तस्य करुण-विलापेन ।
यमदेव, परिमृजतु एतत्परिप्रेक्षम् ।

यमः । तत्र याति द्रौपदी पाण्डव-सहाया ।

सावित्री । आम्, सा मेघे विद्युदिव निभाति कति शोभनीया !
अहो, भव्यो भाति गन्धमादनपर्वतश्च
क्वति रमणीयं हि चित्ररथ-कमल-वनम् !

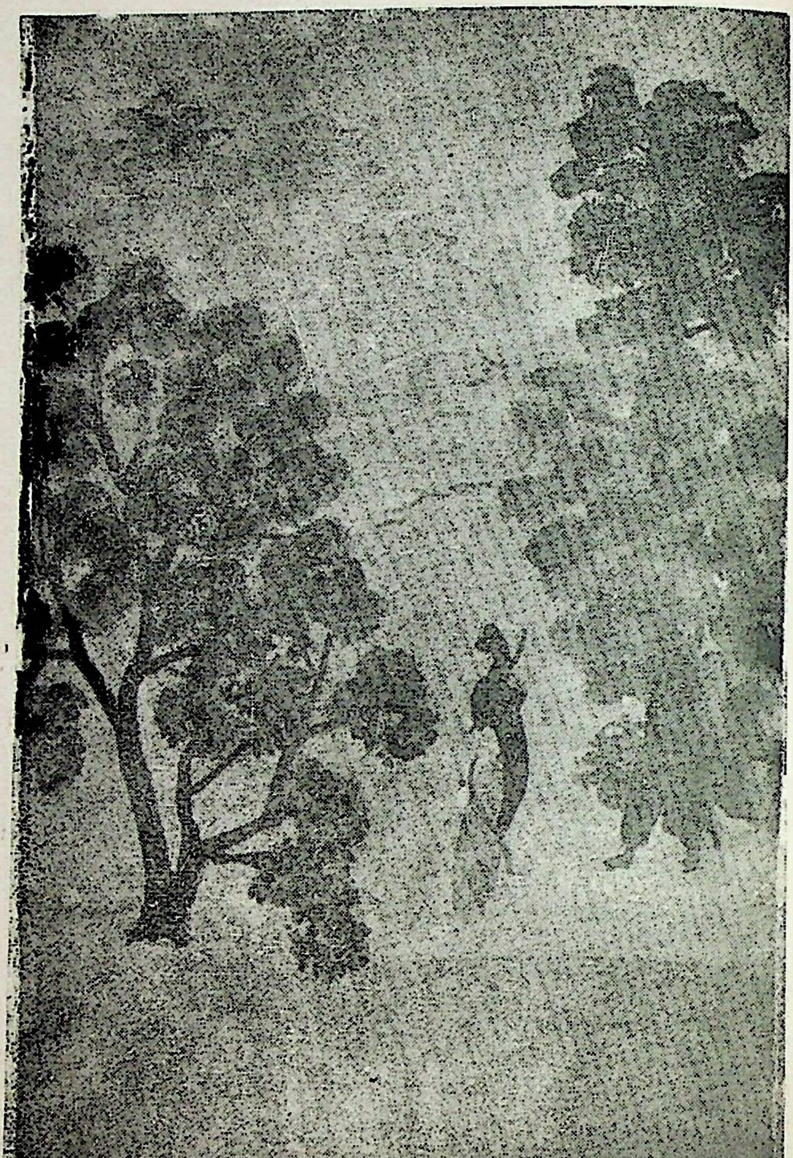

तत्र तु भगवान् राम एषः

यमः । पश्य सावित्रि, कालिन्दी-कूलमपि ।
मुकुलिता गोधूलि-वेला । तत्र किं सन्ध्यति
विश्लथ-मनोरथा सा गोपिका एका !

सावित्री । अयि, सा कथं उन्मादिनीव परिष्वजति
कृष्ण-गो-वत्सम्, तरुण-कदम्ब-काण्डम
च कृष्णसारमृगम् ? ... ...
अयि, श्रुणोमि, अहमपि श्रृणोमि, तद्वेणु-नादम् !
आह, निपतिता च सम्मूर्च्छिता राधा ! **(रोदिति)**

यमः । सावित्रि, श्रृणु तत्र पांचजन्य-ध्वानमपि
भारत-युद्धस्य उपगानमिव । ... ...

सावित्री । कौ तौ असुर-सौध-विमाने चित्रलिखिताविव ?

यमः । सुदृष्टन्त्वया तत्र बाणासुर-प्रासाद-शिखरे
उषाऽनिरुद्ध-प्रणय-क्रीडितम् ।

सावित्री । के ते नील-नदी-तटे स्थापयन्ति गगन-चुम्बि-मन्दरान्
शिल्पयन्ति च स्फुरत्कोणान् स्फीत-कंसान् ?

यमः । ते तु सौरमिश्राः । ते स्थापयन्ति आश्वान-सूर्य-मन्दिरम्
च बहून्यपरिमितान् स्कन्धान् ।

सावित्री । क एषो विरौति झंझावाते विरह-संवृत इव ?

यमः । असावग्रे एकः ग्रीक-कविः ऑरफियस नामा सन्देहात्मा ।
प्रियाशंकिनस्तस्य जीवन-संगिनी
पुनः प्रतिगच्छति मृत्यु-लोके ।

सावित्री । किमिदम्, सुस्मिता जाता दिशाः !

यमः । अथ च किम्मन्त्रयति राका विशाखा ?

सावित्री । पुण्या रात्रिः । पश्यामि ... ...
तत्र महानिष्क्रमणं कुमारगौतमस्य
प्रसुप्त-विलास-कक्षात् । कथन्न जागर्ति यशोधरा ?
....

साधु साधु, मधुरं मधुरम् ।
स तपति नीराजना-तटे मारजिद् वज्रासनस्थः ।
कथं लघु उपसरति तं सिद्धार्थं सा
क्वणित-किंकिणी सुजाता
सक्षीरा, विस्मृत-शरीरा !

यमः । तत्र प्रज्ज्वालति यशोधरा
दारक-राहुलेन सह आकाश-दीपम् ।

सावित्री । किन्तु किन्निमित्तम् ?

यमः । पश्य सावित्रि, तन्नौकामपि चीवर-दीप्ताम् ।
स याति धर्मदूतोमहेन्द्रः भिक्षुणीभगिनी-संघमित्रा सह,
सिंहल-समुद्रे ।

सावित्री । के ते तक्षकाः तक्षन्ति गुहा-विवरान्
वामियान-बुद्ध-प्रतिमामतिमाम् ?

यमः । एवमेवं हि सुलोचने,
तत्र शोभन्ते सांची, अजन्ता, नालन्दा,
बोधगया प्रभृतयः सौगत-धर्म-तीर्थाः ।

सावित्री । धन्या कला-शिल्पिनः । कालो हि तैः भूषितः ।

....

किन्तु कथं पुनः संघट्टति अधिरजनी अनवसितेव
यवन-सैन्य-वाहिनी ।

यमः । आम्, पुनः प्रज्ज्वलति पद्मिनी धरणी ।

सावित्री । कोयम् अवतरति चक्रधरः दण्डपाणिः ?

यमः । जानीहि तं सावित्रि,
विप्लव-घोषेण च जय-कलरवेण
अर्धनग्नं शुभ्र-चीवर-धारिणम् अहिंसावतारम्
महात्मानम् ।

सावित्री । कोऽन्यः ऋषिः कमल-वने शान्ति-पुलिने
समर्च्चति विभूं गीतांजलिना ?

यमः । यो वाऽऽसीत रामगिर्याश्रमे निर्वासितो यक्षः ।
स एव प्रतीयते कालिदासस्य आत्मप्रत्ययः ।
'ऋतवाचा पुनर्भवा' इति मे छन्दः ।

सावित्री । तीव्रं हि विलयतीव अन्धकारः !
किन्धनति आकाशे च के ते स्वरा अमृताक्षराः ?

यमः । तत्र आश्वासयति पार्वती देवान्, त एव प्रफल्ल-स्वराः ।

(आकाशे)

यं कामये तं तमुग्रं करोमि
तं ब्राह्मणं तमृषिं तं सुमेधाम् ।
अहं रुद्राय धनुरातनोमि
ब्रह्मद्विषे शरवे हन्त वा ऊ ॥

यमः । तत्र अवतरति पार्वती मानस-तटे ।
उपगता तस्याः स्नान-वेला ।
अपि च वितरति उषा स्वर्ण-रेखाः ।
अप्सरसां च दिग्वधूनां प्राह्-शृङ्गार-लेखाः ।
सन्नद्धा ममाऽपि प्रातः सवण-वेला
प्राची-समुद्रे सन्ध्योपाकरणाय ।

सावित्री । (चकितेव) तावदुपगता प्रत्यूष-वेला ।
ततोऽवर्जनीया खलु मे उपस्थितिः मानस-तटे ।
सद्योमया गन्तव्यम् । ... ...
देवेश्वर यम, देहि मे सत्यवन्तम् । सत्यं कुरु ते वचनम् ।
स्मरणीयन्त्वया स्वप्रदत्त-वरम्—
सत्यवतासह मे औरसपुत्रशतम् !

यमः । (**स्वपाशं परिलक्ष्य**) किमिति, निर्भार इव मे पाशः !
अरे, मया प्रदत्तवचनादेव विमुक्तः स सत्यवान्
प्रवहति निर्वाधं स्वदेह-दिशाम् ।
विजयतुतरां सावित्रि, त्वरय त्वमपि मानस-तटे ।
पराजितोऽयम् यमः । तत्र भवति पुष्पवृष्टिः ।
अभिवर्षति च त्वत्कृते कुन्देन्दुहारधवला देवानां शुभाशीः ।
अथ मयाऽपि सद्यः विधातव्यम् प्रातः सवणोपह्वानव्रतम् ।
मयाऽपि आरोहितव्यं पितृ-रथे अरुण-प्रग्रह-ग्राह-वल्गः,
याम-क्रमेण भुवनानि पश्यन् । (**तिरोहति यमः**)
(**मानस-तटे सावित्र्याः समाधि-जागरणम् । सा सहसा उत्थाय प्रमृजति सत्यवतो ललाटं पार्वती-पदांकितेन अमृतेन । उच्छ्वसति सत्यवान् उन्मीलित-नेत्रः ।**)

सत्यवान् । (**अक्षिणी विमृज्य**) सावित्रि, कुत्रस्थौ आवाम् ?
स्वापान्ते कथं पश्यामि त्वामेवम्
शिथिलाऽलकां च दिग्ध-कपोल-पालीम् !
अग्रे निभाति नील-मणि-प्रभासः
मानस-सरः शुभ्र-कैलास-मुकुरः ।
नदन्ति विधुराः मधु-चक्रवाकाः
तटे विलग्ना कलहंस-मालाः ॥

सावित्री । अपगता रात्रिः । गतं दुःखम् । तिरोहितोऽभिषंगः ।
जागर्तिरियम् सत्यवान् ! तत्राऽऽकाशे मन्त्रयते देवर्षि नारदः ......

(**आकाशे**)

'तमसो मा ज्योतिर्गमय, असतो मा सदगमय,
मृत्योर्मा अमृतं गमय ।'

सावित्री । एहि, प्रिय, प्रतिगच्छावः ऋभुवने । तत्रैव कथयिष्ये
निःशेष-नैश-कथाम् । (**प्रविशति कचः**)

कचः । गतनिद्रः सत्यवानिति मन्ये ।

सावित्री च सत्यवान् प्रणमतः कचम् अतिसंभ्रमेन)

सावित्री । **(गद्गद्-स्वरा)** स्वागतन्ते देव-पुत्र कच !
त्वमेव हि मे सुप्रभातम् ।
एहि तावत् पश्यामो वयम् पुनः ऋभुवनम् ।
(ते परिक्रामन्ति च सहसा विरम्य)

सावित्री । क एषः भस्म-राशिः चन्दन-गन्ध इव ।

कचः । **(अनुचिन्त्य)** आम्, सावित्रि, अत्र तिष्ठति कलरवः
देवदूतः आग्नेयास्त्रेण भस्मराशि-परिणतः ।

सावित्री । हा, महात्मन्, विश्वबन्धो, त्वमेवोपसंहृतः एवम् !
(ते सर्वे प्रणमन्ति, परिक्रमन्ति च भस्म-राशिम्
तथा च प्रमृजन्ति स्वस्व-ललाटं कलरव-भस्मेन)

कचः । सावित्रि, उपाह्वय तव अमृत-संकल्पेन कलरवम् !
(सावित्री प्रार्थयति च परिक्रमति चिता-भूमिम्)
(जागर्ति कलरवः । ततो बालखिल्यैः सह प्रविशतः
ऋभुश्च काशा ।
तौ परिष्वजतः प्रगाढम् सावित्रीं च सत्यवन्तम् ।
ध्वनति आकाशे शंखनादश्च अप्सरा-गीतिः ।
सर्वे गायन्ति... ... ...)

जयतु जयतु जननी,
भव-दव-निर्वहणी,
ऋतम्भरा धरणी !
तार-हार-दिव-निचिता,
रवि-शशि-द्युति-संवलिता,
अमृत-सरित-सरिणी !

द्यु-कुलाय-संकुलिता,
स्वर-गंगा-संगमिता,
विमला-वैतरणी !
सिन्धु-वलित-सुश्रोणी,
हरिता-भरिता-क्षोणी,
हिम-गिरि-सित-श्रेणी !
अन्तःश्रुति-प्रतिभासा,
ज्योतिःशिख-संकाशा,
वाणी निर्झरिणी !
कालिन्दी-परिरम्भा,
सुरसरिता-विश्रम्मा,
शाम्भवी, शिखरिणी !
राम-कृष्ण-बुद्ध-धरा,
धर्मपरा, शान्ति-स्वरा,
सुर-संभृता अवनी !

(जवनिका)

(इति चतुर्थोऽङ्कः)

इति समाप्ता श्रीब्रह्मदेव-विरचिता सावित्री-नाटिका ।

संस्कृत-काव्य-रचना में एक अभिनव-प्रस्थान

वेला

संस्कृत-नाटिका

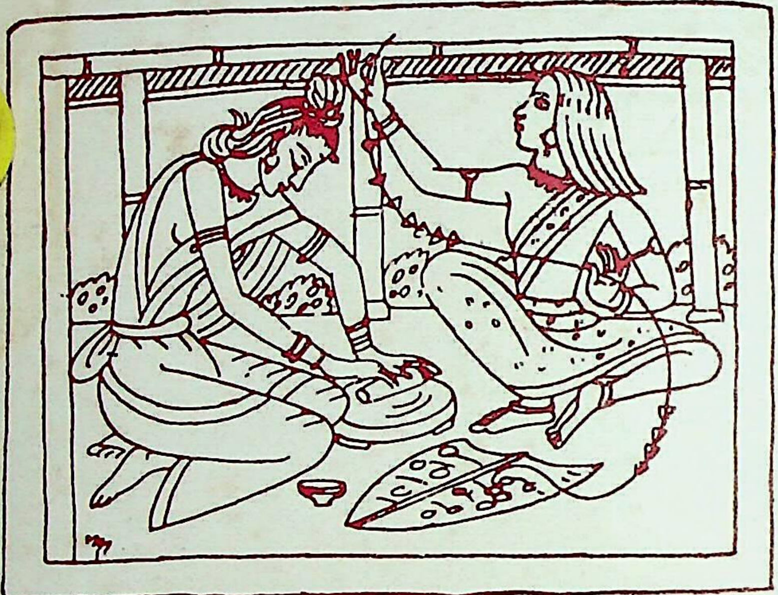

[श्री नन्दलाल वसु की कृति से, साभार]

ब्रह्मदेवशास्त्री

मूल्य : रु० ४१.००
छात्रों, पुस्तकालयों तथा पुस्तक-विक्रेताओं से
रु० २५.०० मात्र

प्राप्ति-स्थान—ब्रह्मदेव शास्त्री
२५, मलकागंज रोड,
जवाहरनगर, दिल्ली-११०००७

कालिन्दी प्रकाशन
दिल्ली